ॐ

कश्मीर शैवदर्शन पर आधारित

शिव और शक्ति

— जब दो नहीं, एक है —

Aadisatv

ॐ

शिव और शक्ति — जब दो नहीं, एक है

लेखक: Aadisatv

कश्मीर शैव, तंत्र और अद्वैत की जीवित सुगंध में लिखा गया एक हिंदी आध्यात्मिक ग्रंथ

अनुक्रम

1 तंत्र का असली अर्थ — जो किसी ने नहीं बताया

2 शिव: वो चेतना जो सब कुछ है

3 शक्ति: जब चेतना नाचती है

4 प्रत्यभिज्ञा: पहचानो, तुम पहले से शिव हो

5 तंत्र और तिब्बत: रिगपा और स्पंद एक ही सत्य

6 जगत मिथ्या नहीं — जगत शिव है

7 पूर्णता: जब साधक और साधना दोनों गिर जाते हैं

1 — तंत्र का असली अर्थ — जो किसी ने नहीं बताया

तंत्र को लेकर दुनिया में जितनी भ्रांतियाँ हैं, उतनी शायद किसी और आध्यात्मिक शब्द को लेकर नहीं। किसी के लिए तंत्र केवल सेक्स है, किसी के लिए काला जादू, किसी के लिए डरावने कर्मकांड, और किसी के लिए निषिद्ध अनुभवों का आध्यात्मिकीकरण। पर तंत्र इन सब सीमित समझों से अनंत बड़ा है। तंत्र जीवन-विरोधी नहीं, जीवन-साक्षी है। तंत्र शरीर से घृणा नहीं करता, पर शरीर में गिरने की अनुमति भी नहीं देता। तंत्र इच्छा को केवल दोष नहीं कहता, पर इच्छा में अचेतन बहाव को भी मुक्ति नहीं मानता। तंत्र सबसे पहले तुम्हारी धारणाएँ तोड़ता है।

तंत्र का मूल भाव विस्तार और मुक्ति है। “तन्” — विस्तार, प्रसार, खुलना। “त्र” — पार ले जाना, संरक्षित करना, मुक्त करना। इस दृष्टि से तंत्र वह विद्या है जो चेतना को सिकुड़न से निकालकर उसके असली विराट आयाम में स्थापित करे। इसलिए तंत्र का लक्ष्य भोग नहीं, बोध है; दमन नहीं, दर्शन है; त्याग नहीं, तत्त्व की पहचान है। तंत्र कहता है — जहाँ-जहाँ तुम्हें विभाजन दिख रहा है, वहीं-वहीं अभी अज्ञान है।

यही कारण है कि तंत्र अन्य कई मार्गों से अधिक साहसी प्रतीत होता है। जहाँ कोई मार्ग कह सकता है — इसे छोड़ो, उससे दूर भागो, यह अपवित्र है — तंत्र पूछता है, अपवित्र किसके लिए? यदि सब कुछ चेतना में प्रकट है, तो चेतना से बाहर कौन-सी वस्तु हो सकती है? यह प्रश्न आलस्य या अधर्म का निमंत्रण नहीं, अद्वैत का विस्फोट है। तंत्र का “हाँ” अंधी स्वीकृति नहीं, जागृत स्वीकृति है। यह जागरूकता के साथ स्वीकार है — कोई भी अनुभव अंतिम नहीं, पर कोई भी अनुभव चेतना से बाहर भी नहीं।

अभिनवगुप्त ने तंत्र को केवल साधना-पद्धति नहीं माना, बल्कि संपूर्ण जीवन-दृष्टि के रूप में देखा। तंत्रालोक इसी दृष्टि का विराट उद्घाटन है। उसमें तंत्र को किसी एक मंत्र, एक देवता, एक पंथ, एक कर्मकांड तक सीमित नहीं किया गया। वहाँ तंत्र चेतना की पूर्ण वास्तुशिल्पी दृष्टि है — शरीर, मन, इच्छा, ज्ञान, क्रिया, कला, सौंदर्य, संगीत, प्रेम, भय, मृत्यु, ध्यान, सबको समाविष्ट करने वाली। यह वही परंपरा है जिसमें कुछ भी बाहर नहीं है, क्योंकि बाहर जैसी कोई स्वतंत्र जगह ही नहीं है।

जॉर्ज फॉयरस्टीन ने भी तंत्र के विषय में यह स्पष्ट किया कि उसका सत्य अर्थ यौन-रहस्यवाद या सांस्कृतिक सनसनी नहीं, बल्कि चेतना-विस्तार और आध्यात्मिक एकीकरण की परंपरा है। तंत्र मनुष्य को टुकड़ों में नहीं देखता। वह यह नहीं कहता कि शरीर को छोड़कर आत्मा तक जाओ। वह कहता है — शरीर भी उसी चेतना का क्षेत्र है, मन भी, प्राण भी, रस भी। जब तक साधक स्वयं को विभाजित करके जीता है, तब तक उसकी साधना भी विभाजित रहेगी।

तंत्र की सच्ची क्रांति यह है कि वह अस्वीकार को नहीं, पहचान को महत्व देता है। इच्छा उठे — उसे दबाओ मत, उसका पीछा भी मत करो; उसकी जड़ में जाओ। भय उठे — उससे भागो मत, उसके भीतर छिपे “मैं” को देखो। क्रोध उठे — उसे केवल पाप कहकर मत दबाओ; देखो उसमें कितनी ऊर्जा छिपी है और वह ऊर्जा किस अज्ञान में बंधी है। तंत्र की दृष्टि में ऊर्जा शत्रु नहीं, अचेतनता शत्रु है।

इसलिए तंत्र कभी भी अनैतिक स्वच्छंदता का नाम नहीं हो सकता। “सब शिव है” कहकर अज्ञान को वैध ठहराना तंत्र नहीं। “कुछ अपवित्र नहीं” कहकर हिंसा, लोभ या वासना के अंधेपन को आध्यात्मिक बना देना तंत्र नहीं। तंत्र वहाँ शुरू होता है जहाँ जागरूकता भय से बड़ी हो जाती है। जहाँ साधक जीवन से भागना बंद करता है, और उतनी ही स्पष्टता से उसमें खोना भी बंद करता है।

अंततः तंत्र का अर्थ है — जीवन के किसी भी हिस्से को बाहर न रखना। न शरीर को, न मन को, न कला को, न प्रेम को, न मृत्यु को, न संसार को। तंत्र कहता है — जिसे तुम अस्वीकार कर रहे हो, उसे चेतना में पहचानो। जिसे तुम पवित्र कह रहे हो, उसे भी पकड़ो मत। जो कुछ भी प्रकट है, वह शिव-शक्ति की लीला है। मुक्ति इस लीला से भागने में नहीं, इसे सही प्रकाश में देखने में है।

मूल पंक्ति या सूत्र

तनु विस्तारे, त्रै रक्षणे — तंत्रम्।

— तांत्रिक व्युत्पत्ति-परंपरा

अर्थ: तंत्र वह है जो चेतना को विस्तार देता है और सीमितता से मुक्त करता है।

विस्तार: तंत्र केवल तकनीक नहीं, चेतना का विस्तार है। जहाँ मन सिकुड़ता है, तंत्र खोलता है। जहाँ व्यक्ति स्वयं को टुकड़ों में बाँटता है, तंत्र समग्रता लाता है। जहाँ आध्यात्मिकता जीवन के विरोध में खड़ी होती है, तंत्र कहता है — जीवन को उसके मूल चैतन्य में पहचानो।

❧ **संकेत: जिस मार्ग को जीवन से डर लगता है, वह अभी पूर्ण नहीं हुआ। जो कुछ भी उठ रहा है, उसे चेतना में पहचानो — यही तंत्र का द्वार है।**

मूल पंक्ति या सूत्र

यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयौ।
तं शक्तिचक्रविभवप्रभवं शङ्करं स्तुमः॥

— स्पन्दकारिका परंपरा

अर्थ: जिनके उन्मेष और निमेष से जगत का उदय और लय होता है, उस शंकर को नमस्कार।

विस्तार: तंत्र संसार को दुर्घटना नहीं मानता। ब्रह्मांड चेतना की धड़कन है। हर उठना और गिरना, हर बनना और मिटना, उसी स्पंद का हिस्सा है। संसार को त्यागने से पहले उसकी दिव्य धड़कन को सुनना आवश्यक है।

❧ **संकेत: संसार को ईश्वर से अलग मत करो। जो कुछ प्रकट हो रहा है, वह उसी मौन की आँख खुलना है।**

मूल पंक्ति या सूत्र

ज्ञानं बन्धः।

— शिवसूत्र १.२, क्षेमराज-परंपरा

अर्थ: सीमित ज्ञान ही बंधन है।

विस्तार: यहाँ ज्ञान का अर्थ परमज्ञान नहीं, बल्कि संकीर्ण धारणाएँ हैं — यह पवित्र, यह अपवित्र; यह संसार, यह ईश्वर; यह मैं, यह दूसरा। मन जब किसी अवधारणा में अटक जाता है, वही उसका कारागार बन जाती है। तंत्र इस कारागार की दीवारों को गिरा देता है।

❧ **संकेत: जो तुम जानते हो, पहले उसी पर संदेह करो। सत्य तुम्हारी मान्यताओं से बड़ा है।**

मूल पंक्ति या सूत्र

न ग्रहणं न त्यागः, महामुद्रा निरालम्बा।

— तिलोपा, महामुद्रा-उपदेश

अर्थ: न पकड़ना, न जबरन त्यागना; सर्वोच्च सत्य किसी आधार पर टिका नहीं।

विस्तार: तंत्र और महामुद्रा दोनों का हृदय यही है। वस्तु को पकड़ना बंधन है, वस्तु को नकारना भी नया बंधन हो सकता है। यदि साधक अनुभव की प्रकृति पहचान ले, तो वही अनुभव जागरण का द्वार बन सकता है।

❧ **संकेत: न भोगी बनो, न भागी बनो। जागो — और जो है, उसमें अपनी ही चेतना को पहचानो।**

अभ्यास

आज अपने भीतर किसी ऐसी चीज़ को देखो जिसे तुम “आध्यात्मिक” नहीं मानते।
उसे दबाओ मत, उसका पीछा भी मत करो।
केवल पूछो — इस अनुभव में ऊर्जा कहाँ है, और इसे जानने वाली चेतना कौन है?
कुछ क्षण उस जानने में ठहरो।
यहीं तंत्र का पहला द्वार खुलता है।

2 — शिव: वो चेतना जो सब कुछ है

शिव को यदि केवल जटा, गंगा, चंद्रमा, भस्म, नाग और त्रिशूल से समझा जाए, तो प्रतीक मिलते हैं, तत्त्व नहीं। कश्मीर शैव मत में शिव किसी विशेष पौराणिक आकृति तक सीमित नहीं। शिव वह शुद्ध, स्वयंप्रकाश, अचल चेतना है जिसके बिना कोई भी अनुभव संभव नहीं। वह न केवल देखने वाला है, बल्कि वह प्रकाश है जिसके कारण देखना संभव है। वह किसी वस्तु की तरह पकड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि हर वस्तु पहले से उसी में जानी जाती है।

जब शिवसूत्र कहता है "चैतन्यमात्मा" तो यह केवल दार्शनिक वाक्य नहीं, प्रत्यक्ष उद्घोषणा है। आत्मा कोई सूक्ष्म कण नहीं, कोई स्वर्गीय जीव नहीं, कोई मानसिक अवस्था नहीं। आत्मा चैतन्य है — वह जीवित जागरूकता जिसमें शरीर जाना जाता है, मन जाना जाता है, विचार और अनुभव जाने जाते हैं। जो "मैं हूँ" की मूल उपस्थिति है, वही शिव है।

शिव को निष्क्रिय शून्य समझ लेना भी भूल है। कश्मीर शैव मत का शिव मृत स्थिरता नहीं, जीवित प्रकाश है। वह अचल है क्योंकि कोई परिवर्तन उसे बदल नहीं सकता, पर वह निर्जीव नहीं। उसमें स्वयं को जानने की क्षमता है, और इसी कारण उसमें विश्व-प्राकट्य की संभावना है। यही बिंदु शिव को केवल साक्षी की अवधारणा से आगे ले जाता है। वह केवल देखता नहीं; वह स्वयं-प्रकाशित है।

स्वामी लक्ष्मणजू की व्याख्याओं में प्रत्यभिज्ञा का यही हृदय बार-बार प्रकट होता है — तुम शिव बनते नहीं, तुम शिव को पहचानते हो। यदि साधक इसे केवल विचार की तरह लेता है, तो अहंकार कहता है, "मैं शिव हूँ।" पर यदि यह वाक्य मौन में उतरता है, तो व्यक्ति का "मैं" ढीला पड़ता है और चेतना की व्यापकता प्रकट होती है। इस पहचान में गर्व नहीं, विनम्रता आती है।

स्पन्दकारिका शिव को अचलता और कंपन के जीवित रहस्य के रूप में देखती है। चेतना स्थिर भी है और धड़कती भी। वह किसी वस्तु में नहीं बंधी, फिर भी हर वस्तु के रूप में चमकती है। विचार उठता है — शिव की भूमि में। विचार गिरता है — शिव की भूमि में। दुःख आता है, सुख आता है, ध्यान आता है, अशांति आती है — सब उसी अचल प्रकाश में।

तिब्बती द्जोगचेन की रिग्पा-शिक्षा यहाँ सुंदर समानांतर खोलती है। रिग्पा भी वही स्वयंज्ञानी जागरूकता है — बिना केंद्र, बिना परिधि, बिना बनावट। वह कोई अभ्यास से निर्मित अवस्था नहीं, बल्कि मूल जागृति है। कश्मीर शैव मत का शिव और द्जोगचेन का रिग्पा गहरे स्तर पर उसी अनिर्वचनीय उपस्थिति की ओर संकेत करते हैं।

शिव को पहचानना किसी अनुभव को उत्पन्न करना नहीं है। यह उस अपरिवर्तनशील जानने को पहचानना है जो हर अनुभव के साथ उपस्थित है। ध्यान गहरा हो या उथला, मन शांत हो या अशांत, शरीर स्वस्थ हो या पीड़ित — जानने की मूल रोशनी बनी रहती है। साधना इस रोशनी को बनाने के लिए नहीं, उसे छिपाने वाले भ्रमों को पारदर्शी करने के लिए है।

मूल पंक्ति या सूत्र

चैतन्यमात्मा।

— शिवसूत्र १.१

अर्थ: चेतना ही आत्मा है।

विस्तार: आत्मा किसी विचार, व्यक्ति या रूप तक सीमित नहीं। जो मूल जानना है, वही आत्मा है। जब साधक इस सूत्र पर ठहरता है, तो वह धीरे-धीरे देखता है कि शरीर और मन “मेरे” हो सकते हैं, पर “मैं” नहीं।

❧ **संकेत: शिव को मत खोजो; जिस जानने में खोज उठ रही है, उसे देखो। वही शिव का पहला स्पर्श है।**

मूल पंक्ति या सूत्र

चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः।

— प्रत्यभिज्ञाहृदयम् १

अर्थ: चिति स्वतंत्र है और विश्व की सिद्धि का कारण है।

विस्तार: चेतना किसी बाहरी वस्तु की दासी नहीं। वही मूल स्वतंत्र सत्ता है। उसी की स्वातंत्र्य-शक्ति से जगत प्रकट है। इसलिए शिव संसार से बाहर बैठा हुआ देवता नहीं, बल्कि विश्व-प्रकाश का आधार है।

❧ **संकेत: तुम्हारी चेतना सीमित नहीं; सीमितता चेतना में उठी हुई एक लहर है।**

मूल पंक्ति या सूत्र

उद्यमो भैरवः।

— शिवसूत्र १.५

अर्थ: भीतर की तीव्र जागृति ही भैरव है।

विस्तार: जब साधक एक क्षण को कहानी से बाहर उठता है और जीवित जागरूकता में खड़ा हो जाता है, वही भैरव का स्पर्श है। भैरव कोई दूर भयावह देवता नहीं; वह चेतना की विस्फोटक जागृति है।

❧ **संकेत: जब एक क्षण के लिए भी तुम अपनी कहानी से बाहर जागते हो, वही भैरव का द्वार है।**

मूल पंक्ति या सूत्र

रिग्पा स्वयंप्रकाश है — न जन्मा, न सीमित।

— लोंगचेनपा, द्जोगचेन उपदेश

अर्थ: मूल जागृति बनाई नहीं जाती; वह पहले से पूर्ण है।

विस्तार: द्जोगचेन और कश्मीर शैव मत दोनों इस ओर संकेत करते हैं कि मूल जागरूकता प्रयास का फल नहीं, पहचान का विषय है। बादल हटते हैं; आकाश उत्पन्न नहीं होता।

❧ **संकेत: जागृति को मत बनाओ। जो हमेशा से जाग रहा है, उसी में विश्राम करो।**

अभ्यास

शांत बैठो और केवल यह देखो — विचार आ रहे हैं।

अब देखो — विचारों को कौन जान रहा है?

उस जानने को कोई आकार मत दो।

कुछ क्षण उसी निराकार जागरूकता में विश्राम करो।

यही शिव की प्रत्यक्ष भूमि है।

3 — शक्ति: जब चेतना नाचती है

यदि शिव चेतना है, तो शक्ति उसी चेतना की गतिशीलता है। यदि शिव मौन है, तो शक्ति उसी मौन का गीत है। यदि शिव प्रकाश है, तो शक्ति उसी प्रकाश की स्वयं को प्रकट करने की क्षमता है। कश्मीर शैव मत में शक्ति कोई गौण, बाहरी या दूसरी सत्ता नहीं। वह शिव की अपनी स्वातंत्र्य-शक्ति है। शिव और शक्ति दो नहीं; वे एक ही वास्तविकता के अचल और गतिशील आयाम हैं।

यही वह बिंदु है जहाँ तंत्र संसार को नई आँख से देखता है। जगत ब्रह्म से “बनाया” हुआ कुछ नहीं; जगत वही ब्रह्म है जब वह नृत्य करता है। शक्ति इस नृत्य का नाम है। वह चेतना की रचनात्मक लय है — इच्छा, ज्ञान, क्रिया, प्रेम, कला, करुणा, भाषा, देह, श्वास, समय, विकास, सब उसी के रूप हैं।

क्षेमराज जब चिति के विमर्श की बात करते हैं, तब वे शक्ति के सबसे सूक्ष्म आयाम को छूते हैं। चेतना केवल प्रकाश नहीं; वह अपने प्रकाश को जानती भी है। यही आत्म-विमर्श शक्ति है। यदि चेतना स्वयं को न जानती, तो वह पूर्ण न होती। शक्ति शिव की आत्म-जागरूकता है, और इसी आत्म-जागरूकता में विश्व-लीला संभव होती है।

रामकृष्ण परमहंस ने काली को बाहरी मूर्ति से आगे जीवित चेतना के रूप में जिया। उनके लिए माँ केवल पूजा की वस्तु नहीं, स्वयं ब्रह्म की गतिशीलता थी। वे बार-बार कहते थे — ब्रह्म और शक्ति अलग नहीं, जैसे अग्नि और उसकी दाहकता अलग नहीं। यह तंत्र की भाषा है, भले वे उसे शास्त्रीय शैली में न कहें।

श्री अरविंद की शक्ति-दृष्टि भी यहाँ सुगंधित रूप से जुड़ती है। उनके यहाँ शक्ति दिव्य विकास का बल है — वह चेतना जो जड़ से जीवन, जीवन से मन, और मन से अतिक्रमण की ओर जगत को ले जा रही है। तंत्र इसे संसार-त्याग नहीं, चेतना-विकास की लीला के रूप में देख सकता है। शक्ति केवल बाहर नाचती नहीं; वह भीतर विकसित भी होती है।

तिलोपा की महामुद्रा में कहा गया कि सर्वोच्च मुहर वह है जहाँ मन किसी से चिपकता नहीं। यह शक्ति की मुक्ति-छटा है। शक्ति गति है, पर पकड़ नहीं। अनुभव उठे, बहें, विलीन हों — यदि चिपकाव न हो, तो ऊर्जा मुक्त रहती है। यदि पकड़ आ गई, तो वही शक्ति बंधन बन जाती है। इसलिए शक्ति का सम्मान ऊर्जा की पूजा में नहीं, ऊर्जा की जागृत पहचान में है।

साधक के लिए यह समझ अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि शक्ति को अक्सर केवल विशेष अनुभव, कुंडलिनी, चमत्कार या सिद्धि तक सीमित कर दिया जाता है। पर शक्ति इससे कहीं व्यापक है। तुम्हारी श्वास भी शक्ति है, आँसू भी, करुणा भी, सृजन भी, मौन भी। तंत्र शक्ति को संकीर्ण नहीं करता; वह उसे जीवन की संपूर्ण धारा में देखता है।

मूल पंक्ति या सूत्र

स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।

— प्रत्यभिज्ञाहृदयम् २

अर्थ: चिति अपनी ही भूमि पर अपनी इच्छा से विश्व को प्रकट करती है।

विस्तार: जगत किसी दूसरी सामग्री से बना हुआ नहीं। चेतना स्वयं को स्वयं में खोलती है। इसलिए शक्ति कोई बाहरी ऊर्जा नहीं; वह चेतना की स्वयंप्रकटता है।

❧ **संकेत: जो जगत दिख रहा है, वह चेतना से अलग नहीं। शक्ति शिव की ही खुली हुई आँख है।**

मूल पंक्ति या सूत्र

चितिः स्वातन्त्र्येण शक्तिरूपा विमर्शात्मिका।

— कश्मीरी शैव विमर्श-परंपरा

अर्थ: चिति अपनी स्वतंत्रता में शक्ति है और उसका स्वरूप आत्म-विमर्श है।

विस्तार: चेतना केवल चमकती नहीं, स्वयं को जानती भी है। यही विमर्श शक्ति है। इसी में विश्व-लीला और आत्म-ज्ञान दोनों की संभावना छिपी है।

❧ **संकेत: अपने भीतर उठती हर ऊर्जा को दोष मत दो; उसकी जड़ में चेतना की स्वतंत्रता को पहचानो।**

मूल पंक्ति या सूत्र

यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परं पदम्।

— विज्ञानभैरव-तंत्र

अर्थ: मन जहाँ भी जाए, वहाँ भी परम पद की संभावना है।

विस्तार: तंत्र किसी अनुभव को स्वतः बाधा नहीं कहता। प्रश्न यह नहीं कि मन कहाँ गया; प्रश्न यह है कि क्या तुम उसमें चेतना को भूल गए। यदि नहीं, तो वही अनुभव द्वार बन सकता है।

❧ **संकेत: मन जहाँ भी जाए, तुम चेतना को मत खोओ। वही अनुभव तंत्र बन जाएगा।**

मूल पंक्ति या सूत्र

महामुद्रा उस मन के समान है जो किसी से चिपकता नहीं।

— तिलोपा, महामुद्रा उपदेश

अर्थ: सर्वोच्च जागृति पकड़े बिना बहती है।

विस्तार: शक्ति का नृत्य तभी मुक्त है जब उसमें स्वामित्व नहीं। ऊर्जा को "मेरा" बनाते ही बंधन उत्पन्न होता है। खुली जागरूकता में ऊर्जा अपने मूल स्वभाव में शुद्ध रहती है।

❧ **संकेत: शक्ति को बहने दो, पर उसे "मेरा" मत बनाओ। ऊर्जा मुक्त है; पकड़ ही बंधन है।**

अभ्यास

आज अपने शरीर की धड़कन, श्वास और ऊर्जा को ध्यान से महसूस करो।
उसे आध्यात्मिक या सांसारिक मत कहो।
केवल देखो कि यह सारी गति किस जागरूकता में उठ रही है।
ऊर्जा को बहने दो, पर उससे पहचान मत बनाओ।
यहीं शक्ति शिव में लौटती है।

4 — प्रत्यभिज्ञा: पहचानो, तुम पहले से शिव हो

कश्मीर शैव मत की हृदयस्थ शिक्षा है — प्रत्यभिज्ञा, अर्थात पुनः पहचान। यहाँ मुक्ति को उपलब्धि की तरह नहीं, स्मरण की तरह समझा जाता है। जैसे कोई व्यक्ति स्वप्न में स्वयं को भिखारी समझ ले और जागने पर देखे कि वह कभी अपनी सत्ता से गिरा ही नहीं था, वैसे ही जीव अपने शिव-स्वरूप को खोता नहीं, केवल भूल जाता है। साधना इस विस्मृति की धुंध हटाने का नाम है।

उत्पलदेव की ईश्वरप्रत्यभिज्ञा में यही केंद्रीय घोषणा है — तुमने स्वयं को खोया नहीं है; तुमने स्वयं को सीमित समझ लिया है। जीव और शिव दो स्वतंत्र वास्तविकताएँ नहीं। एक ही चेतना, जब स्वयं को संकुचित होकर अनुभव करती है, जीव है; जब स्वयं को असीम पहचानती है, शिव है। इसीलिए मुक्ति का अर्थ किसी दूसरी सत्ता में प्रवेश नहीं, स्व-स्वरूप का उद्घाटन है।

यह दृष्टि अज्ञान को भी नई रोशनी में देखती है। यहाँ अज्ञान कोई बाहरी, शैतानी तत्व नहीं। तंत्र में आवरण भी शिव की ही शक्ति का खेल है। चेतना स्वयं को छुपाती है, फिर स्वयं को प्रकट करती है। तिरोभाव और अनुग्रह — दोनों लीला के अंग हैं। इस कारण साधक अपने अंधकार से घृणा नहीं करता; वह उसमें छिपे संकुचन को पहचानता है।

मिलारेपा की कथा यहाँ अद्भुत रूप से प्रासंगिक है। मारपा की कठोर कृपा ने उन्हें तोड़ा, तपाया, खाली किया। यह केवल तपस्या नहीं थी; यह पहचान की तैयारी थी। कभी-कभी कृपा फूल जैसी नहीं, हथौड़े जैसी होती है। जब तक झूठी पहचान मजबूत है, सत्य की कोमलता भी प्रवेश नहीं कर पाती। इसलिए प्रत्यभिज्ञा कभी सहज झलक है, कभी अग्नि से जन्मी स्पष्टता।

साधक की सबसे गहरी भूल यह है कि वह स्वयं को खोजने वाला मानता है। प्रत्यभिज्ञा कहती है — खोजने वाला ही खोजी हुई सत्ता का सीमित रूप है। यही कारण है कि इस मार्ग में गुरु, शास्त्र और साधना सब स्मरण के उपकरण हैं, अंतिम सत्य नहीं। वे तुम्हें नई चीज़ नहीं देते; वे तुम्हारी आँखों से परदा हटाते हैं।

यहाँ विनम्रता आवश्यक है। यदि मन सुन ले “मैं पहले से शिव हूँ” तो वह आध्यात्मिक अहंकार बना सकता है। पर यदि यह हृदय में उतरे, तो व्यक्ति अधिक कोमल, अधिक खुला, अधिक निस्स्वार्थ हो जाता है। पहचान तुम्हें दूसरों से ऊँचा नहीं करती; वह सबमें उसी चैतन्य को देखने लगती है।

मूल पंक्ति या सूत्र

प्रत्यभिज्ञा नाम पुनः स्वात्मस्मरणम्।

— प्रत्यभिज्ञा-परंपरा का सार

अर्थ: प्रत्यभिज्ञा अपने ही आत्मस्वरूप का पुनः स्मरण है।

विस्तार: इस मार्ग में मुक्ति अर्जित नहीं की जाती; पहचानी जाती है। तुम्हारे भीतर का मूल “मैं हूँ” कभी नष्ट नहीं हुआ। जो मिटा नहीं, उसे बनाना कैसे संभव है?

❧ **संकेत: तुम शिव को नहीं पाते; तुम शिव को भूलना बंद करते हो।**

मूल पंक्ति या सूत्र

चित्तमेव हि संसारः, तदेव शिवदर्शने विमुक्तिः।

— प्रत्यभिज्ञा-भाव, उत्पलदेव-अभिनवगुप्त परंपरा

अर्थ: वही चित् संसार बनती है और वही शिव-दृष्टि में मुक्ति।

विस्तार: समस्या जगत में नहीं, पहचान में है। जब चेतना स्वयं को सीमित मानती है, संसार बंधन बनता है। जब वही स्वयं को शिव के रूप में पहचानती है, वही जगत लीला बन जाता है।

❧ **संकेत: जगत को बदलने से पहले देखने वाले को पहचानो। वही परिवर्तन मूल है।**

मूल पंक्ति या सूत्र

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।

— तांत्रिक-शैव परंपरा

अर्थ: शिव शक्ति से युक्त होकर ही प्रकट होता है।

विस्तार: आवरण भी शक्ति है, अनुग्रह भी शक्ति है। इसलिए जो बंधन जैसा प्रतीत हो रहा है, वह भी अंतिम सत्य में चेतना की ही लीला का हिस्सा है।

❧ **संकेत: अपने बंधन को भी सचेतन देखो; उसमें छिपी मुक्ति की दिशा प्रकट होने लगेगी।**

मूल पंक्ति या सूत्र

बादल आकाश में उठते हैं और आकाश में ही विलीन होते हैं।

— मिलारेपा, दोहा-परंपरा

अर्थ: विचार और भाव जागृति से अलग नहीं।

विस्तार: मन की गति समस्या नहीं, उससे पहचान समस्या है। यदि विचारों को उनके स्वभाव में देखा जाए, तो वे भी उसी खुली चेतना में उठते और गिरते हैं।

❧ **संकेत: अपने विचारों से मत लड़ो। देखो — वे किस आकाश में उठ रहे हैं?**

अभ्यास

आज बार-बार रुककर पूछो — मैं अभी स्वयं को क्या मान रहा हूँ?

शरीर, मन, भूमिका, कहानी — सबको देखो।

फिर धीरे से अनुभव करो — इन सबको जानने वाला कौन है?

उत्तर मत बनाओ।

जिस मौन में यह प्रश्न डूबता है, वही प्रत्यभिज्ञा की भूमि है।

5 — तंत्र और तिब्बत: रिगपा और स्पंद एक ही सत्य

कश्मीर शैव मत और तिब्बती द्जोगचेन-महामुद्रा, दो भौगोलिक और सांस्कृतिक परंपराएँ होते हुए भी, एक ही मौन की दो भिन्न संगीत रेखाएँ लगती हैं। कश्मीर कहता है — स्पंद, चेतना की दिव्य धड़कन। तिब्बत कहता है — रिग्पा, नग्न स्वयंप्रकाश जागृति। एक में जीवित कंपन पर बल है, दूसरे में खुली आकाशीय जागरूकता पर; पर दोनों का केंद्र यही है कि मूल वास्तविकता पहले से मुक्त, पूर्ण और प्रकाशमान है।

स्पंद को साधारण कंपन समझना भूल होगी। वह ऐसी सूक्ष्म दिव्य लय है जिसमें चेतना स्थिर भी है और गतिशील भी। हर विचार, हर संवेदना, हर अनुभूति उसी मूल स्पंद की एक झलक है। दूसरी ओर रिग्पा वह खुलापन है जिसमें कोई केंद्र नहीं, कोई परिधि नहीं, कोई कर्ता नहीं। यदि रिग्पा को जीवन की धड़कन में देखा जाए, तो वह स्पंद से अलग नहीं। यदि स्पंद को मूल जागरूकता की शांति में देखा जाए, तो वह रिग्पा से अलग नहीं।

लोंगचेनपा बार-बार कहते हैं कि मूल जागृति को बनाना नहीं, पहचानना है। वह अनावरणित है, भले मन के बादल उसे ढँकते प्रतीत हों। यह कश्मीर शैव मत की प्रत्यभिज्ञा और चिति-दृष्टि से बहुत निकट है। दोनों परंपराएँ बादल हटाने की बात करती हैं, नया आकाश गढ़ने की नहीं।

नारोपा और तिलोपा की महामुद्रा-रेखा एक अत्यंत महत्वपूर्ण व्यावहारिक सूत्र देती है — विचारों को रोकने की कोशिश मत करो, उनके स्वभाव को पहचानो। कश्मीर शैव मत यही बात दूसरे तरीके से कहता है — हर लहर चिति की है; उसका स्पंद पहचानो। जब साधक विचार से लड़ना बंद करके उसके स्वभाव को देखता है, तब मन युद्धभूमि के बजाय शिक्षागृह बन जाता है।

यहाँ तुलनात्मक धर्म का बौद्धिक खेल नहीं, अनुभव की एकता का संकेत है। स्पंद और रिग्पा दो अलग सिद्धांत नहीं, दो अभिव्यक्तियाँ हैं। एक चेतना के नृत्य की तरह बोलता है, दूसरा चेतना के खुले आकाश की तरह। एक जीवन की लय को रेखांकित करता है, दूसरा उसी लय के आधारभूत शून्य-प्रकाश को। पर जब साधक परिपक्व होता है, तो दोनों एक-दूसरे की पुष्टि करते हैं।

इसका साधक के लिए गहरा अर्थ है। यदि मन अशांत है, तब भी मूल जागृति उपलब्ध है। यदि मन शांत है, तब भी। यदि ऊर्जा तीव्र है, वह स्पंद है। यदि खुलापन शांत है, वह रिग्पा है। और यदि तुम इन दोनों को विरोधी नहीं, एक ही सत्य की द्वि-अभिव्यक्ति की तरह जीओ, तो साधना अधिक सहज, अधिक निर्भीक और अधिक प्रत्यक्ष हो जाती है।

मूल पंक्ति या सूत्र

यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयौ।

— स्पन्दकारिका

अर्थ: जिसके उन्मेष-निमेष से जगत का उदय-विलय होता है।

विस्तार: स्पंद चेतना की जीवित धड़कन है। यह ब्रह्मांडीय स्तर पर भी है और अनुभव के सूक्ष्मतम क्षण में भी। जो उठता है और गिरता है, वही स्पंद की ओर संकेत करता है।

❧ **संकेत: हर अनुभव को पकड़ने से पहले उसकी धड़कन सुनो। वही स्पंद तुम्हें स्रोत तक ले जाएगा।**

मूल पंक्ति या सूत्र

रिग्पा निरावरण, स्वयंप्रकाश और सहज पूर्ण है।

— लोंगचेनपा

अर्थ: मूल जागृति को बनाया नहीं जाता; वह पहले से उपस्थित है।

विस्तार: द्जोगचेन साधक से कहता है कि विचारों के पीछे भागने या उन्हें रोकने के बजाय मूल जागृति को पहचाने। यही कश्मीर शैव प्रत्यभिज्ञा से गहरे रूप से मिलता है।

❧ **संकेत: विचार को शत्रु मत बनाओ। उसके भीतर की जागरूकता पहचानो — वही विचार का मुक्त होना है।**

मूल पंक्ति या सूत्र

विचारों को रोकना मत चाहो; उनके स्वभाव को पहचानो।

— नारोपा, महामुद्रा उपदेश-परंपरा

अर्थ: विचारों का दमन नहीं, उनकी प्रकृति की पहचान ही मार्ग है।

विस्तार: मन के विरुद्ध संघर्ष मन को ही मजबूत करता है। पहचान मन को पारदर्शी करती है। यही बिंदु महामुद्रा और स्पंद-दृष्टि को एक ही भूमि पर खड़ा करता है।

❧ **संकेत: मन शांत हो तो भी जागो; मन अशांत हो तो भी जागो। जागृति अवस्था पर निर्भर नहीं।**

मूल पंक्ति या सूत्र

उत्पन्न विचार उसी क्षण मुक्त है, यदि उसकी प्रकृति पहचानी जाए।

— महामुद्रा-द्जोगचेन परंपरा

अर्थ: विचार स्वयं बंधन नहीं; अज्ञान उसे बंधन बनाता है।

विस्तार: अनुभव को रोकना जरूरी नहीं। उसे उसके मूल में देखना जरूरी है। यदि विचार को पकड़ने वाला “मैं” ढीला पड़े, तो वही विचार मार्गदर्शक बन सकता है।

❧ **संकेत: अनुभव को मिटाओ मत; उसके भीतर जो कभी नहीं मिटता, उसे पहचानो।**

अभ्यास

विचार उठे तो उसे रोकने की कोशिश मत करो।
केवल देखो — वह किस जागरूकता में उठ रहा है?
फिर विचार की ऊर्जा को महसूस करो — उसकी सूक्ष्म धड़कन।
जागृति और धड़कन को अलग मत करो।
यहीं रिग्पा और स्पंद एक हो जाते हैं।

6 — जगत मिथ्या नहीं — जगत शिव है

तंत्र की सबसे साहसी घोषणाओं में से एक है — जगत मिथ्या नहीं, जगत शिव है। इस कथन को समझना अत्यंत आवश्यक है। इसका अर्थ यह नहीं कि संसार जैसा भी अनुभव हो, उसे अंधे होकर स्वीकार कर लिया जाए। इसका अर्थ यह है कि जगत चेतना से बाहर नहीं। वह स्वतंत्र परम-सत्य नहीं, पर चेतना का प्रकाशित आभास है। इसलिए उसे केवल त्याज्य कहना अधूरी दृष्टि होगी।

अद्वैत वेदांत संसार को मिथ्या कहता है — अर्थात न पूर्णतः वास्तविक, न पूर्णतः अवास्तविक; स्वतंत्र परमसत्ता नहीं। कश्मीर शैव मत इसी अंतर्दृष्टि को आगे बढ़ाते हुए कहता है कि जगत चिति का आभास है, अभास है, प्रकाशित विस्तार है। यदि सब कुछ उसी चैतन्य से चमक रहा है, तो फूल, संगीत, प्रेम, कला, प्रकृति, शरीर, संबंध — सब उसकी उपस्थिति के क्षेत्र हैं।

अभिनवगुप्त के लिए सौंदर्य और रस भी आध्यात्मिक महत्व रखते हैं। रस में अहंकार शिथिल होता है। किसी महान राग, काव्य या नाट्य में डूबते हुए व्यक्ति कुछ समय के लिए अपनी निजी कहानी से ऊपर उठ जाता है। यह उठान तंत्र के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसी में व्यक्ति अपने सीमित स्वार्थ से परे किसी सार्वभौम चेतना का स्वाद ले सकता है। इसलिए तंत्र सौंदर्य को साधना से बाहर नहीं रखता।

“जगदानंद” — विश्वानंद — यही तांत्रिक हृदय है। संसार का आनंद तभी समाधि-सुख से जुड़ सकता है जब देखने वाला जाग्रत हो। अन्यथा भोग और बंधन होगा। तंत्र अनुभव से भागता नहीं, पर अनुभव को पकड़ने से रोकता है। इस कारण संगीत, रूप, स्पर्श, सौंदर्य, भोजन, संबंध — सब द्वार बन सकते हैं, यदि उनमें जागरूकता और अनासक्ति उपस्थित हो।

यहाँ भी सावधानी आवश्यक है। जगत को शिव कहना भोग को वैध करना नहीं। तंत्र का उत्सव चिपकने का उत्सव नहीं। यह मुक्त सौंदर्य है, स्वामित्व-रहित रस है। अनुभव का स्वाद लो, पर उसे “मेरा” न बनाओ। तब सौंदर्य दासता नहीं, द्वार बनता है। तब दुनिया केवल बाजार नहीं रहती; वह मंदिर की तरह खुल सकती है।

इस अध्याय का गहरा सामाजिक और अस्तित्वगत अर्थ भी है। यदि सब शिव का आभास है, तो पृथ्वी केवल संसाधन नहीं; प्रकृति पवित्र है। संबंध केवल उपयोग नहीं; जीवित मंडल हैं। कला केवल मनोरंजन नहीं; साधना की संभावना है। इस दृष्टि से तंत्र आधुनिक विभाजित मनुष्य को फिर से समग्रता में लौटाता है।

मूल पंक्ति या सूत्र

स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।

— प्रत्यभिज्ञाहृदयम् २

अर्थ: चिति अपनी भूमि पर अपनी इच्छा से विश्व को प्रकट करती है।

विस्तार: यदि विश्व उसी चिति पर प्रकट है, तो वह उससे बाहर नहीं। इसलिए संसार को केवल त्याज्य कहना तंत्र की दृष्टि नहीं। पहचानो कि हर रूप उसी प्रकाश की झलक है।

❧ **संकेत: संसार को पकड़ो मत, संसार से भागो मत। संसार में चमकती चेतना को पहचानो।**

मूल पंक्ति या सूत्र

सर्वं खल्विदं ब्रह्म।

— छान्दोग्य उपनिषद्

अर्थ: यह सब ब्रह्म ही है।

विस्तार: तंत्र इस वाक्य को जीवन के प्रत्येक रस में उतारता है। यदि सब ब्रह्म है, तो केवल समाधि नहीं, सौंदर्य भी; केवल मौन नहीं, संगीत भी; केवल मंदिर नहीं, जगत भी।

❧ **संकेत: जिसे तुम साधारण समझते हो, उसमें भी असाधारण चेतना धड़क रही है।**

मूल पंक्ति या सूत्र

विस्मयो योगभूमिकाः।

— शिवसूत्र १.१२

अर्थ: विस्मय योग की भूमि है।

विस्तार: विस्मय के क्षण में मन की जकड़न ढीली पड़ती है। सौंदर्य, आकाश, संगीत, मृत्यु, प्रेम — जो भी वास्तविक विस्मय दे, वह अहंकार में दरार खोल सकता है।

❧ **संकेत: जहाँ तुम सच में चकित हो जाते हो, वहाँ मन की दीवार में दरार पड़ती है।**

मूल पंक्ति या सूत्र

लोकानन्दः समाधिसुखम्।

— शिवसूत्र १.१८

अर्थ: संसार का आनंद ही समाधि का सुख हो सकता है।

विस्तार: यदि दृष्टि शिवमय हो, तो लोक और समाधि विरोधी नहीं। जब देखने वाला बंधनरहित हो, तब जगत का सौंदर्य आत्मा को जगाने का माध्यम बन सकता है।

❧ **संकेत: यदि देखने वाला जागृत है, तो जीवन ही समाधि की खुली आँख है।**

अभ्यास

आज किसी सुंदर वस्तु, ध्वनि या दृश्य को पूर्ण ध्यान से देखो या सुनो।
उसे पकड़ने की कोशिश मत करो।
देखो कि सौंदर्य में “मैं” कुछ क्षण के लिए ढीला पड़ता है या नहीं।
उस खुलेपन में ठहरो।
यही रस तांत्रिक साधना बन सकता है।

7 — पूर्णता: जब साधक और साधना दोनों गिर जाते हैं

हर वास्तविक मार्ग का अंतिम सत्य यह है कि वह स्वयं को भी पार कर देता है। नाव पार उतरने के बाद सिर पर नहीं ढोई जाती। साधना भी अंततः साधक को वहाँ ले जाती है जहाँ साधना की आवश्यकता गिर जाती है। कश्मीर शैव मत इस उच्चतम स्थिति को "अनुपाय" कहता है — ऐसा उपाय जिसमें कोई उपाय शेष नहीं। यह आलस्य नहीं, परिपक्वता है। यह तब खुलता है जब पहचान इतनी स्वच्छ हो जाती है कि तकनीक से अधिक प्रत्यक्षता पर्याप्त हो जाती है।

अभिनवगुप्त का "अनुत्तर" इसी पूर्णता का नाम है। जिसके आगे कुछ नहीं, जिसके ऊपर कुछ नहीं, जिसके परे कुछ नहीं। यह कोई नवीन उपलब्धि नहीं, बल्कि इस अंतर्दृष्टि का उदय है कि सत्य कभी अनुपस्थित था ही नहीं। साधक का "मैं प्रयास कर रहा हूँ" धीरे-धीरे पिघलता है, और एक खुला, स्वयंसिद्ध विश्राम प्रकट होता है।

तिलोपा की अंतिम शिक्षा नारोपा के लिए भी यही है — छोड़ दो। अतीत को मत ढोओ, भविष्य को मत बुनो, वर्तमान को भी वस्तु मत बनाओ। अपने मूल स्वभाव में विश्राम करो। यदि इसे अपरिपक्व मन सुनता है तो आलस्य का खतरा है; यदि परिपक्व हृदय सुनता है, तो यह वाक्य मुक्ति का द्वार है। क्योंकि तब साधना किसी उपलब्धि का साधन नहीं रहती, बल्कि स्वभाव में विश्राम का स्मरण बन जाती है।

लोंगचेनपा "खोज की थकान" को समाप्त करने की बात करते हैं। यह अत्यंत सूक्ष्म है। जब खोजने वाला यह देख लेता है कि वह अपने ही आधार से भागकर अपने ही आधार को खोज रहा था, तो भीतर एक महान विश्राम आता है। यह निष्क्रियता नहीं, अनावश्यक संघर्ष की समाप्ति है। अब अनुभवों को सुधारने की बाध्यता कम होती है। विचार आएँ, जाएँ; भाव उठें, गिरें; केंद्र वही खुलापन बना रहता है।

कश्मीर शैव मत इसे इस रूप में भी कहता है कि आत्मा नर्तक है। जीवन चलता रहता है; भूमिका चलती है; शरीर, संबंध, कर्म, भाषा सब रहते हैं। पर भीतर अब कठोर कर्ता नहीं। नर्तक है, पर नृत्य में खोया हुआ भी नहीं। जागरूकता आधार बनी रहती है। इसी को सहजता, पूर्णता, स्थितप्रज्ञता, शिव-विश्रांति, या जो भी नाम देना चाहो, दे सकते हो।

इस अंतिम चरण में आध्यात्मिक अहंकार को भी गिरना पड़ता है। "मैं जानता हूँ", "मैं पहुँचा हूँ", "मैं शिव हूँ" — ये सब सूक्ष्म आवरण हैं। जब सचमुच पहचान परिपक्व होती है, तो व्यक्ति अधिक सरल हो जाता है। दावे कम होते हैं, उपस्थिति अधिक। प्रदर्शन कम होता है, करुणा अधिक। यही सच्चे तांत्रिक परिपाक की पहचान है।

अंततः पुस्तक भी गिरनी चाहिए। यदि शब्द तुम्हें शब्दों में कैद कर दें, तो वे व्यर्थ हैं। यदि वे तुम्हें उस मौन तक पहुँचा दें जहाँ शब्द स्वयं शांत हो जाएँ, तो उनका कार्य पूर्ण है। शिव और शक्ति पर सारी चर्चा भी अंततः उसी मौन में समर्पित होनी है। वहाँ न शिव कहना आवश्यक है, न शक्ति; जो है, वही स्वयं प्रकट है।

मूल पंक्ति या सूत्र

अनुपायः परमोपायः।

— कश्मीर शैव अनुत्तर-परंपरा

अर्थ: अंतिम उपाय वह है जहाँ कोई उपाय शेष नहीं रहता।

विस्तार: यह उपाय-विरोध नहीं, उपाय की परिपक्व परिणति है। जब पहचान परिपक्व हो जाती है, तब तकनीक की बजाय प्रत्यक्ष जागृति पर्याप्त हो जाती है।

❧ **संकेत: साधना करो जब तक साधक है। पर जानो — सत्य साधना से बना नहीं, केवल प्रकट हुआ।**

मूल पंक्ति या सूत्र

अतीतं मा चिन्तय, भविष्यं मा कल्पय, वर्तमानं मा गृह्णीयाः।

— तिलोपा, महामुद्रा-उपदेश का सार

अर्थ: अतीत में मत उलझो, भविष्य मत बुनो, वर्तमान को भी मत पकड़ो।

विस्तार: मन तीनों कालों में स्वयं को गढ़ता है। जब पकड़ ढीली होती है, तब स्वभाव में विश्राम संभव होता है। यही अनुपाय की दिशा है।

❧ **संकेत: समय से बाहर जाना कोई यात्रा नहीं; अभी की पकड़ छोड़ते ही काल का जादू ढीला पड़ता है।**

मूल पंक्ति या सूत्र

जो कुछ उठता है, वह स्वभावतः मुक्त है; उसे सुधारने वाला कौन?

— लोंगचेनपा, द्‌जोगचेन सार

अर्थ: अनुभव अपने मूल में मुक्त है; अज्ञान उसे बंधन बनाता है।

विस्तार: अंतिम विश्राम अनुभवों के सुधार में नहीं, उनकी प्रकृति की पहचान में है। जो उठ रहा है, वह भी उसी जागृति में है जिसे तुम खोज रहे थे।

❧ **संकेत: अपने अनुभव को पूर्ण बनाने की कोशिश मत करो। उस जागृति को पहचानो जिसमें अपूर्णता भी प्रकट है।**

मूल पंक्ति या सूत्र

नर्तक आत्मा।

— शिवसूत्र ३.९

अर्थ: आत्मा ही नर्तक है।

विस्तार: जीवन चलता है, पर अब कर्ता की कठोरता कम है। भूमिका है, नृत्य है, अभिव्यक्ति है — पर आधार में खुली चेतना है। यही सहज पूर्णता है।

❧ **संकेत: जीवन को नृत्य होने दो। नर्तक को खोजोगे, तो केवल चेतना मिलेगी।**

अभ्यास

कुछ देर बिल्कुल कुछ न करो।
ध्यान करने की भी कोशिश मत करो।
जो उठता है, उठने दो; जो गिरता है, गिरने दो।
केवल खुली जागरूकता में विश्राम करो।
जहाँ करने वाला गिरता है, वहीं पूर्णता प्रकट है।